धर्मे ते धीयतां बुद्धिः

मनस्ते महदस्तु च

भारत रत्न महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी

संस्थापक

त्यागमूर्ति गोस्वामी गणेशदत्त जी

संयोजक

सनातन संवर्धिनी

पंचम वर्ष – प्रथम अंक

जून – 2019

श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब, (पंजी.) नई दिल्ली

(कार्यक्षेत्र: दिल्ली, चण्डीगढ़, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान)

मुख्य कार्यालय: भूपेन्द्र भवन, कृष्णा मार्केट, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55, दूरभाष: 011-23586251, 23584016

शाखा कार्यालय-1: सप्तऋषि आश्रम, सप्तसरोवर मार्ग, हरिद्वार, दूरभाष: 01334-261702

शाखा कार्यालय-2: गोस्वामी गणेशदत्त भवन, सैक्टर-19 ए, मध्य मार्ग, चण्डीगढ़, दूरभाष: 0172-2543283

E-mail: sdprsabha@gmail.com

संपादक मण्डल

संरक्षक

डॉ. शिवकुमार शर्मा

संपादक मण्डल

डॉ. नन्द किशोर शर्मा

डॉ. भारती बन्धु

डॉ. विजय शर्मा

परामर्श मण्डल

श्री इन्द्र मोहन गोस्वामी

श्री उपेन्द्र शर्मा

श्री सरदारी लाल गोस्वामी

डॉ. देश बन्धु

डॉ. आर. पी. विज

अर्द्ध कुम्भ प्रयागराज में श्री सनातन धर्म महावीर दल पंजाब के सेवा-शिविर की झलकियाँ

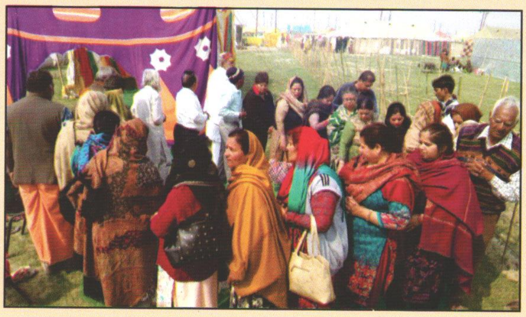

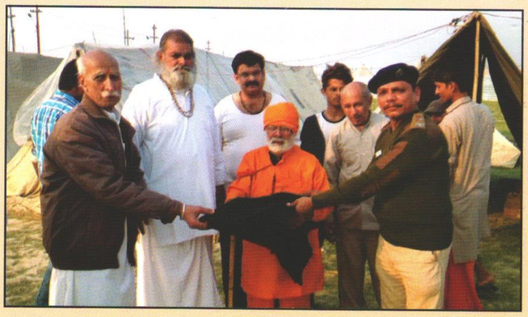

सनातन धर्म में यज्ञ की महिमा

सृष्टि के प्रारम्भ से ही यज्ञ सनातन धर्म का आराध्य इष्ट रहा है। यज्ञ सनातन धर्म का मूल उत्स है। सनातन धर्म के सोलह संस्कारों के विधान में यज्ञ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में यज्ञ के बिना सनातनी पुरुष के प्रतिदिन के धार्मिक क्रिया–कलाप भी सम्पन्न नहीं हो सकते। फलतः यज्ञ सनातन धर्म के भव्य भवन की सुदृढ़ आधारशिला भी है और इसके गगनचुम्बी सांस्कृतिक प्रासाद का देदीप्यमान तेजोमय स्वर्ण कलश भी। वेदों और शास्त्रों में यज्ञ की अपार महिमा का वर्णन किया गया है। यज्ञ सृष्टि–चक्र का मूलाधार है। सृष्टि के समस्त क्रिया–कलाप एवं कार्य–व्यापार यज्ञ रूपी धुरी के चारों ओर चलायमान है। अथर्ववेद में यज्ञ को समूचे भुवन की सृष्टि का केन्द्र बिन्दु कहा गया है – **अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।** अतः समग्र सृष्टि की सुव्यवस्था को बनाये रखने के लिए यज्ञ–प्रक्रिया नितान्त महत्त्वपूर्ण है।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं गीता आदि धर्मग्रन्थों में यज्ञ की अपार महिमा को रेखांकित किया गया है। अनेक स्थलों पर यज्ञ को साक्षात् परब्रह्म, परमात्मा एवं सत्य का पर्याय माना गया है। चौबीस अवतारों में एक अवतार यज्ञ भगवान् का भी है। वेदों में यज्ञ की पग–पग पर प्रशंसा एवं प्रार्थना है। इन प्रशंसाओं एवं प्रार्थनाओं में यज्ञ में समाहित अदृश्य दिव्य शक्तियों का वर्णन है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :–

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः।
निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। – यजु. ३/६३

अर्थ – हे यज्ञ! तू निश्चय से कल्याणकारी शिव है। स्वयंभू परमेश्वर तेरा पिता है। तेरे लिए नमस्कार हैं, तू हमारी रक्षा कर। दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य–समृद्धि, श्रेष्ठ सन्तति एवं मंगलोन्मुखी बल–पराक्रम के लिए हम श्रद्धा–विश्वासपूर्वक तेरा सेवन करते हैं।

इसी यज्ञ पुरुष से सम्पूर्ण सृष्टि के प्रादुर्भाव का वर्णन ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में उपलब्ध होता है –

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत सम्भूतंपृषदाज्यम्। पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्यांश्चये।।
तस्मात्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद् अजायत।। – यजु. ११/६/७

अर्थात् उस विराट रूप परम पुरुष ने यज्ञ से संसार के समस्त पशुओं (प्राणियों) को उत्पन्न किया। चाहे वे आकाश में उड़ने वाले हों, जल में रहने वाले हों या भूमि पर वास करने वाले स्त्री–पुरुष, गौ, अश्व आदि ग्राम्य और सिंह, व्याघ्र, गज आदि अरण्यवासी हों। इतना ही नहीं उस परमात्मा ने यज्ञ से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामक चारों वेदों को प्रकट किया और यज्ञ से ही इन्हें धारण कर रखा है। धारण करने से अभिप्राय है कि यज्ञ पर ही चारों वेदों का अस्तित्व आधृत है।

गीता के तीसरे अध्याय में यज्ञ की सर्वातिशायी महिमा का वर्णन है। यहां यज्ञ की आध्यात्मिक महिमा के साथ–साथ इसके वैज्ञानिक रहस्य को भी स्पष्ट किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में पुरुष अर्थात् आत्मा के स्वरूप को यज्ञमय कहा गया है – अथ खलु क्रतुमयोऽयम् पुरुषः। मानव शरीर का प्रत्येक अंग हाथ, पाँव, मुख, मस्तिष्क आदि केवल अपने लिये नहीं बल्कि समूचे शरीर के लिए निर्धारित कार्य व्यापार करता है। यही वैश्विक परार्थ–दृष्टि यज्ञ भावना का प्राण–तत्त्व है। माँ प्रकृति के प्रत्येक भौतिक और दैवीय तत्त्व या रूप – जैसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, पर्जन्य, सरिता, समुद्र आदि भी यज्ञ के इसी परमार्थ भाव से समूची सृष्टि का उपकार करते हैं।

आत्मा परमात्मा का ही अंश है। जब आत्मा यज्ञ रूप है तो उसका अंशी परमात्मा भी यज्ञमय ही है। भगवान् कृष्ण ने गीता के 9वें अध्याय में स्वयं इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि यज्ञ और यज्ञ में प्रयुक्त समस्त सामग्री एवं उपकरण के रूप में साक्षात् मैं स्वयं ही विराजमान हूँ –

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।। – गीता ६/१६

अर्थात् क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा और औषधि भी मैं हूँ, मन्त्र, घृत, अग्नि और हवन रूप में क्रिया भी मैं ही हूँ। गीता के चतुर्थ अध्याय में भी यज्ञकर्म की ब्रह्ममयता एवं भगवदीयता को स्पष्ट किया गया है –

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।। – गीता ४/२४

अर्थात् यज्ञ में प्रयुक्त अर्पण अर्थात् स्रुवा, प्रणीतापात्र, आज्य स्थाली आदि ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है। ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा जो हवन किया जाता है तथा ब्रह्मरूप कर्म में समाधिस्थ होकर यजमान द्वारा जो प्राप्य है वह सब ब्रह्म ही है। गीता का स्पष्ट अभिमत है कि यज्ञ के निमित्त ही सब कर्म करने चाहिएँ। यज्ञ की भावना से भावित होकर किये गये कर्म बन्धन का कारण नहीं बनते क्योंकि उनमें परार्थ और परमार्थ का भाव रहता है। परन्तु स्वार्थ के अधीन किया गया कर्म बन्धन का कारण बनता है – यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयम् कर्मबन्धनः।। इसी स्वार्थ और परमार्थ में गीता की सकामता और निष्कामता की भावव्यंजना निहित है।

सृष्टि चक्र को निरंतर चलाये रखने के लिये यज्ञ–विधान कितना अनिवार्य है इसका उल्लेख भी गीता में मिलता है–

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्। तत्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। – गीता ३/१४–१५

समस्त प्राणियों का भरण–पोषण और विकास अन्न से ही संभव है। जीवन के लिये अपरिहार्य अन्न की उत्पत्ति वर्षा (पर्जन्य) से होती है। वर्षा की उत्पत्ति यज्ञ से होती है। यज्ञ में समर्पित की गई मन्त्रपूत आहुतियों से एक वातावरण बनता है और अंतरिक्ष में मेघ उत्पन्न होते हैं। यज्ञ सत्कर्म से उत्पन्न हुआ है। कर्म वेद से उत्पन्न हुआ और वेद परमात्मा से प्रकट हुये हैं। इससे स्पष्ट है कि सर्वगत परमात्मा सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित रहता है। तभी तो प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में जब प्रजाओं की सृष्टि की तो साथ में यज्ञ की भी सृष्टि की। उन्होंने अपनी प्रजा को उपदेश दिया कि तुम इस यज्ञ से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो। यह यज्ञ देवों और मानवों दोनों को इच्छित भोगों को प्रदान करने वाला होगा। मानव इस यज्ञ से देवताओं को उन्नत, समृद्ध और तृप्त करें। प्रतिफल के रूप में देवता भू–लोक को उन्नत, समृद्ध और तृप्त करें। इस प्रकार एक दूसरे को उपकृत करते हुये तुम दोनों परम–कल्याण को प्राप्त हों –

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। – गीता ३/१०–११

निःसन्देह यज्ञ से पुष्ट हुए देवता भू–लोक वासियों को बिना मांगे ही इच्छित भोग प्रदान करेंगे। पर इन भोगों पर किसी एक व्यक्ति विशेष, वर्ग विशेष या क्षेत्र विशेष का अधिकार नहीं है। यह तो सम्पूर्ण प्राणी मात्र की सम्पत्ति है। यदि कोई इन भोगों को दूसरों की सेवा में लगाये बिना स्वयं ही भोगता है वह चोर है, उच्चकोटि का ठग और तस्कर है और यहाँ तक कि घोर पापी है। क्योंकि केवल अपना पेट पालने वाला, अपने और अपने परिवार तक ही सीमित रहने वाला व्यक्ति अन्न नहीं खाता बल्कि अन्न के रूप में पाप खाता है। इसके विपरीत जो लोग देवताओं द्वारा दिये गये भोगों को यज्ञीय भावना से भोगते हैं अर्थात् उन्हें सभी प्रजा–जनों में समभाव से वितरित करते हैं और केवल यज्ञ शेष का भोग प्रसाद रूप में स्वयं ग्रहण करते हैं वे सभी प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक क्लेशों और कल्मषों से मुक्त हो जाते हैं –

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। – गीता ३/१२
यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। – गीता ३/१३

यज्ञ का अर्थ – सामान्य रूप में यज्ञ का अर्थ है – 'किसी मन्त्र का उच्चारण करते हुये अन्त में स्वाहा शब्द के साथ आहुति को अग्नि में डालना।' अग्नि के माध्यम से ही समस्त देवता हवि को ग्रहण करते हैं क्योंकि अग्नि समस्त देवताओं का मुख है। पर यज्ञ का वास्तविक अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। यज्ञ शब्द 'यजन' अर्थ वाली 'यज्' धातु से निष्पन्न हुआ है। इस दृष्टि से इसके प्रमुख तीन अर्थ हैं – 1. देवपूजन 2. संगतीकरण 3. दान। प्रधान रूप में यज्ञ शब्द का प्रयोग देवपूजन के अर्थ में ही होता है। देवपूजन में देवों के साथ–साथ दिव्य गुण सम्पन्न सत्पुरुषों एवम् श्रेष्ठजनों की सेवा भी यज्ञ है। जिस कार्य के द्वारा देवताओं का सम्मान किया जाए वह यज्ञ है – **यज्यन्ते देवा अनेनेति यज्ञः।** जिस क्रिया या विधि द्वारा देवों का पूजन किया जाये वह भी यज्ञ है – **इज्यन्ते देवा अस्मिन् इति यज्ञः।**

संगीतकरण का अर्थ है एकत्रीकरण। देश, धर्म, जाति की रक्षा के लिये एवम् विश्व कल्याण के लिये श्रेष्ठ जनों को संगठित एवं एकत्रित करना यज्ञ का ही रूप है। इसमें यजमान आज्य के स्थान पर अपने श्रम और संघर्ष की आहुति प्रदान करता है। देश, काल, पात्र आदि का विचार करके सद्उद्देश्य के लिये जो धन या द्रव्य दिया जाता है वह भी यज्ञ की कोटि में आता है। यह आहुति अन्न, वस्त्र, गृह आदि द्रव्य रूप में तथा दान–तप आदि के रूप में भी हो सकती है। वास्तव में मानव कल्याण के लिये और देव अनुग्रह के लिये यजमान जिस प्रकार की आहुति समर्पित करता है उस यज्ञ का वैसा ही नाम और स्वरूप हो जाता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने ऐसे यज्ञों का विस्तार से उल्लेख किया है। कुछ पुरुष द्रव्य सम्बन्धी यज्ञ करते हैं, कुछ तप रूपी यज्ञ करते हैं। कुछ अन्य स्वाध्याय रूपी ज्ञान यज्ञ करते हैं। योगी जन प्राण वायु में अपान वायु को, अपान वायु में प्राण वायु में तथा प्राणों का प्राणों में सन्धान करते हुये अपनी–अपनी क्षमता और साधना के अनुसार हवन किया करते हैं। ऐसे सभी साधक यज्ञ तत्त्व के ज्ञाता होते हैं –

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।। – गीता ४/२८

मानव को चाहिए कि वह स्वयं का जीवन यज्ञमय बनाये। यज्ञमय जीवन ही श्रेय और प्रेय की प्राप्ति का सफल साधन है। अथर्ववेद में भी यज्ञ को सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला कहा गया है – **यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्।** अतः व्यक्ति को सर्व प्रकार से यज्ञ (परार्थ और परमार्थ भाव) के प्रति समर्पित रहना चाहिए। यज्ञ के प्रति इस समर्पण भाव की प्रक्रिया का उल्लेख यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में विस्तार से किया गया है –

आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणोयज्ञेन कल्पतां। चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां।।
वाग्यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन कल्पतां। आत्मा यज्ञेन कल्पतां, ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां।।
स्वर्यज्ञेन कल्पतां, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।।

अर्थात् हमारी आयु यज्ञ के निमित्त हों, हम अपने प्राणों (जीवन) का यज्ञ के निमित्त ही सदुपयोग करें। हमारी समस्त शारीरिक और आत्मिक शक्तियाँ यज्ञ के लिए ही कार्यरत रहें। हमारे नेत्र, वाणी, मन आदि इन्द्रियाँ यज्ञ भाव के प्रति ही समर्पित हों। नेत्रों में पर स्त्री में मातृ भाव हो तथा पर द्रव्य में मिट्टी की भाँति नगण्य भाव हो। कानों से दूसरों की निंदा का रसास्वादन न कर पवित्र वैदिक मन्त्रों, स्तोत्रों एवम् भगवद् भजनों का श्रवण करें। वाणी सत्य और प्रिय हो। वाणी से किसी की हिंसा न करें। कठोर, अप्रिय और असत्य भाषण न करें। हमारे मन और आत्मा यज्ञ की भावना से भावित हों। हमारा ज्ञान और स्वर (श्वास) यज्ञ के लिये ही हो। इन समस्त यांत्रिक इन्द्रियों द्वारा किया गया परमार्थ यज्ञ भी यज्ञ के लिये ही हो ताकि कभी भी इस यज्ञ रूपी कर्म को करने का अहंकार मानव के मन में न आये। इस प्रकार मानव को अपना सर्वस्व उस आदिदेव परात्परब्रह्म स्वरूप यज्ञ पुरुष को समर्पित कर देना चाहिए। वह परब्रह्म स्वयं यज्ञ रूप है और उसी में ही सबकुछ प्रतिष्ठित है। जैसा कि गीता में कहा गया है – **तस्मात् सर्वगतम् ब्रह्म नित्यम् यज्ञे प्रतिष्ठितम्।**

– डॉ. नन्द किशोर शर्मा
प्रधान–सम्पादक

वैदिक कर्मकाण्ड में संस्कारों की उपादेयता

जिस पुरुष के वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियम पूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय पा चुका है उस विज्ञ पुरुष को इस लोक और परलोक में, कहीं भी सिद्धि प्राप्त होने में देर नहीं लगती। सनातन संस्कारों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए महाभारत में कहा गया है :-

"संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राज्ञस्यान्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च।"

जिस प्रकार खान से निकली धातु जब यन्त्रों से परिशुद्ध होकर बाहर आती है तो व्यवहार जगत में उसकी उपयोगिता और मूल्य दोनों ही पूर्व से अधिक हो जाते हैं। इसी प्रकार मानव के सुसंस्कृत होने से उसका गौरव बढ़ जाता है। सनातन धर्म में मानवमात्र गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त शुभ संस्कारों से प्रभावित रहता है तथा उसके आगामी जीवन पर भी उनका प्रभाव देखने में आता है। इसके अनेक उदाहरण वैदिक धर्म ग्रन्थों में देखने को मिलते हैं। महर्षि व्यास, देवर्षि नारद, महर्षि अगस्त्य, महाभागवत प्रह्लाद आदि के जीवन में शुभ संस्कारों का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखलायी देता है।

विश्व के प्रायः हर धर्म-जाति में मानव के कल्याण हेतु संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं, पर उनका रूप एक दूसरे से भिन्न होता है। पूर्व और पश्चिम के संस्कार भिन्न-भिन्न हैं। फलतः उनके जीवन लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के पथ भी भिन्न हैं। वैदिक सनातन धर्म में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। इस कारण इन्हें अनिवार्य रूप से उचित समय पर सम्पन्न कराने का विधान है। श्री राम चरित मानस में वर्णन आता है –

"नन्दी मुख श्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह।
घटक धेनु वसन मनि नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह।"
"करन वेध उपवीत विआहा, संग-संग सब भये उछाहा।"

संस्कार मानव समाज का मेरूदण्ड है। यह शिष्टता, सौजन्यता तथा शील की आधार शिला है। सुसंस्कारी, चरित्रवान तथा शीलवान व्यक्ति मरकर भी अमर होते हैं। आज संस्कारों के अभाव में लोभ, वासनात्मक दृष्टि, विवेकहीनता, असंयम, उच्छृंखलता तथा धैर्य एवं संकल्प शक्ति की कमी प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है। युवा पीढ़ी संस्कारों के अभाव में लगातार भटकाव की ओर बढ़ रही हैं। कुसंस्कारी लोगों को चार चीजें मिलती हैं – अपार अशान्ति, अनवरत दुःख, मरणोत्तर नरक एवं आसुरी योनि की प्राप्ति। इन सब से हम बचे रहें, इसलिए हमें संस्कार सम्पन्न होना चाहिए।

संस्कारी व्यक्ति का प्रत्येक आचरण धर्ममय होता है और उसका प्रत्येक कर्म निरन्तर प्रकाश की ओर ले जाने वाला होता है। संस्कार सम्पन्न बनने के लिए हमें अपने दोषों को दूर करना होगा। अपने को शुभ, सात्विक और उच्च्य चरित्र वाला सुसंस्कृत पुरुष बनाना होगा। अच्छे संस्कारों से ही शुभ कर्म होते हैं। शुभ कर्म वही हैं, जिनसे हमारा अन्तः करण पवित्र हो, मन के भाव उन्नत तथा विशुद्ध हों। अतः अन्नदोष, संगदोष, असद् आचरण और भगवान की विमुखता से अपने को बचाने की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति में उसी जीवन को प्रशस्त माना जाता है, जो शान्त, संतुष्ट तथा आनन्दमय हो। आदर्श जीवन शैली में संयम और सादगी का विशेष मूल्य है तथा अनुशासन और विनय का बहुत महत्त्व है। ऐसा जीवन सुसंस्कारों पर ही निर्भर है। सुसंस्कारों के बिना व्यक्ति का दिग् भ्रान्त जीवन नाविक विहीन समुद्री जहाज के समान इस विस्तृत भव सागर में डगमगाता रहता है।

धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार सुसंस्कृत व्यक्ति को चाहिए कि वह जितेन्द्रिय, पवित्र, चंचलता रहित, सबल, धैर्यशील, लोभहीन, सदाचरण परायण और सर्वभूत हितैषी बनकर अपने शरीरस्थ काम, क्रोध, मोह लोभादि शत्रुओं को जीत सके।

लोक रीति के अनुसार बालक पर ही देश, जाति, धर्म तथा संस्कृति का भविष्य निर्भर है। संस्कारों से ही बालक सद्गुणी, सुविचार सम्पन्न, सत्कर्मी, सेवाधर्मी, आदर्शवान्, अनुशासित एवं संयमी बनता है। इनके संस्कारित होने से ही समाज और देश भी सुसंस्कारित होगा, जबकि इसके विपरीत इनके संस्कार हीन होने पर इनकी स्वयं की, इनके साथ-साथ समाज की तथा देश की दुर्दशा हो जाती है। क्योंकि बालक अनुकरण प्रिय होता है, उसे जो शिक्षा मिलेगी वही ग्रहण करेगा। इसलिए उन्हें मातृ देवों भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव जैसी शिक्षा देनी चाहिए जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम को दी गई थी –

"प्रातः काल उठि के रघुनाथा। मातु पितु गुरु नावहिं माथा।।

पद्म पुराण भी बालक को ऐसी शिक्षा देने का उपदेश देता है –

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतमापन्ने प्रियन्ते सर्वदेवताः।।
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते।।
सर्वतीर्थ मयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात्सर्वयत्नेन पूजयेत्।।

अतः सर्वप्रथम बालक के मन में माता–पिता की सेवा के संस्कार जगाने चाहिएँ। हमारी संस्कृति में माता–पिता और गुरु की महिमा सर्वोपरि है। माता–पिता की सेवा के भाव जागने पर बालक में समाज–सेवा, धर्म–सेवा, राष्ट्रसेवा व मानव सेवा के भाव स्वतः जागृत हो जायेंगे। इसके लिए परस्पर सद्भाव, प्रेम, समरसता व सहकारिता के भाव होना आवश्यक है। हमारी वैदिक आर्य संस्कृति हमको इन सभी उदात्त भावों को अपनाने के लिये व परस्पर मिलजुल कर चलने तथा प्रेमपूर्वक व्यवहार करने की शिक्षा देती है। ऋग्वेद् के इस मन्त्र से यह बात स्पष्ट होती है –

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।
ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।।

हम साथ–साथ बढ़ें, साथ–साथ शक्ति प्राप्त करें, हम परस्पर द्वेष न करें। यह भाव हमें परस्पर एक दूसरे के प्रति रखना चाहिए। यजुर्वेद सभी प्राणियों को परस्पर, एक दूसरे को मित्र दृष्टि से देखने की शिक्षा देते हुए कहता है :–

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।

इसके अलावा बालक को यथायोग्य सदाचार पालन की शिक्षा और शास्त्र पठन–पाठन की शिक्षा के लिए प्रेरित करना चाहिए। क्योंकि तैतिरीयोपनिषद् में कहा गया है – ज्ञान के बिना सद् चरित्र कैसा –

"ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च"।।

वास्तव में यदि देखा जाये तो संस्कार ही हमारे मूल में बसा रहता है, जिसके कारण हम वही कर्म करते हैं जो हमें हमारे संस्कारों से प्राप्त हुए होते हैं। संस्कारित मनुष्य कर्म का विश्लेषण करने के पश्चात् ही कर्म को करने और न करने का निर्णय लेता है। इस पर भी, वह वही कर्म करेगा, जो उसके लिए व समाज और राष्ट्र के लिए हितकर होगा। क्योंकि उसे बार–बार वह स्मरण होता रहता जो उसे संस्कार स्वरूप सिखाया जाता है। मातृ देवो भव! पितृ देवो भव! राष्ट्र देवो भव! अतिथि देवो भव! ये वे उदात्त विचार हैं जो संस्कारित बालक को उच्च जीवन, कृत्य भावना, सम्मान देने की शिक्षा और अपने निजी स्वार्थों को त्याग कर आजीवन राष्ट्र के लिए जीने की भावना सिखाते हैं।

यही नहीं संस्कार ही मनुष्य मात्र की आत्मा है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर मात्र की कल्पना व्यर्थ है, ठीक उसी प्रकार संस्कार के बिना सभ्य समाज, सुसंस्कृत मानव की कल्पना करना भी व्यर्थ ही साबित होगा। इसलिए स्वयं संस्कारित रहते हुए भावी पीढ़ी को संस्कारित करने का जीवन–ध्येय होना चाहिए।

– डॉ. श्याम लाल गौड़
श्री जगद्देव सिंह संस्कृत महाविद्यालय
सप्तऋषि आश्रम, हरिद्वार

राजपूताना का अखंड भारत में विलय

राजपूताना से राजस्थान प्रदेश का निर्माण सात चरण में हुआ, जोकि निम्न है। प्रथम चरण 17 मार्च 1948 रियासतों को मिलकर मत्स्य संघ। द्वितीयचरण 25 मार्च 1948 रियासतों के विलय से बना राजस्थान संघ, तृतीय चरण 18 अप्रैल 1948 उदयपुर विरासत के विलय से संयुक्त राजस्थान, चतुर्थ चरण जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर बीकानेर रियासतों के विलय से वृहद, राजस्थान। इसी दिन को राजस्थान दिवस की घोषणा की गई थी। पंचम चरण 15 मई 1949 मत्स्य संघ के विलय से वृहद राजस्थान। षष्ठम चरण 26 जनवरी 1950, 19 रियासतों के विलय से एकीकृत राजस्थान, सप्तम चरण 1 नवम्बर 1956 एकीकरण पूर्ण बना राजस्थान।

जब लालगढ़ पैलेस में तीन दिन तक चली गुप्त वार्ता

देश की स्वतंत्रता के साथ ही जिन राज्यों के शासकों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने अथवा पाकिस्तान के साथ विलय करने के लिए मन ललचाया था, उनमें तत्कालीन राजपुताने की जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और धौलपुर आदि रियासतों के शासक भी शामिल थे।

इन रियासतों में सीमांत राज्य होने के कारण बीकानेर की स्थिति काफी महत्त्वपूर्ण थी। वहां के तत्कालीन शासक शार्दूल सिंह ने पाकिस्तान की बहावलपुर रियासत के मुस्लिम शासक से सम्पर्क करना उचित समझा। उस समय बहावलपुर की हिन्दू प्रजा साम्प्रदायिक उन्माद के कारण वहां से पलायन कर चुकी थी।

बीकानेर महाराजा ने अपने इस इरादे को अमलीजामा पहनाने के उद्‌देश्य से बहावलपुर के प्राइम मिनिस्टर नवाब मुश्ताक अहमद गुरमानी को गुप्तवार्ता के लिए बीकानेर आमंत्रित किया। वे अचानक लालगढ़ पैलेस के मेहमान बने जिसकी खबर तब तक बीकानेर में किसी को नहीं थी।

इस दौरान एक विशेष सावधानी यह बरती गई कि लालगढ़ पैलेस के चपरासी, चौकीदार और बाबू से लेकर समस्त हिंदू अधिकारियों को तीन दिन के लिए छुट्‌टी दे दी गई तथा उनके स्थान पर मुस्लिम कर्मचारियों को लगा दिया गया। इसके साथ ही इस अवधि में किसी भी गैर मुस्लिम कर्मचारी के पैलेस में प्रवेश पर रोक भी लगा दी गई। इस तीन दिन की गुप्त बैठक के बाद दोनों राज्यों के बीच एक व्यापारिक संधि पर हस्ताक्षर हुए।

बाद में यह संधि राजनीतिक संधि के रूप में परिवर्तित होने लगी जिसके परिणामस्वरूप बीकानेर राज्य भारत से सदा–सर्वदा के लिए अलग हो जाता। परन्तु एक नवोदित पत्रकार को किसी प्रकार इस दुरभिसंधि की भनक लग गई। इस पत्रकार ने राजकोप का जबरदस्त खतरा उठाकर आधी रात के समय, जब समूचा शहर निद्रा में था, लगभग साढ़े चार सौ शब्दों का एक अर्जेण्ट टेलीग्राम अपने अखबार को भेजा जिसके फलस्वरूप दूसरे दिन प्रातःकालीन संस्करण में इस गंभीर षड्‌यंत्र का भंडाफोड़ हो गया।

भारत सरकार के तत्कालीन गृहमंत्री तथा रियासती मंत्रालय के प्रमुख सरदार वल्लभ भाई पटेल ने तत्काल आवश्यक कदम उठाए और इस षड्‌यंत्र को विफल कर दिया।

साप्ताहिक 'सेनानी' के यशस्वी सम्पादक तथा प्रमुख साहित्य सेवी शंभूदयाल सक्सेना के अनुसार यह ऐसा समय था जब बीकानेर रियासत में प्रेस और समाचार पत्र का नाम लेना भी अपराध समझा जाता था। लोग प्लेग और हैजे से इतने नहीं डरते थे जितने गांधी टोपी और खद्‌दर पहन कर आने वाले मेहमान से, क्योंकि प्रेस, अखबार और खद्‌दरधारी मेहमान का मतलब था घर के आसपास गुप्तचरों के चक्कर। यदि पड़ौसियों को पता चल जाता तो वे बात करने से भी कतराने लगते थे।

महाराणा भूपाल सिंह से दिल्ली चलने का निवेदन

यह अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना संभवतः 14 जनवरी 1949 की है, जब देश की स्वतंत्रता के बाद नए भारत के निर्माण में रात–दिन तल्लीन लौहपुरूष सरदार पटेल की उदयपुर में मेवाड़ राज्य के अंतिम शासक महाराणा भूपालसिंह से भेंट हुई। सरदार पटेल जब महल में पहुंचे तो महाराणा के आग्रह अनुरोध के बावजूद उन्होंने आसन ग्रहण नहीं किया और खड़े–खड़े ही हाथ निवेदन किया – 'महाराणा साहब! हम तो आपको दिल्ली ले जाने के लिए आए है, चलिए दिल्ली का सिंहासन संभालिए। आपके पूर्वजों द्वारा देशहित में दी गई कुर्बानियों से ही तो आज यह अवसर आया है।'

सरदार पटेल ने अपनी बात इतनी सरलता, सहज भाव, निष्कपटता और गंभीरता से कही कि महाराणा की आंखें डबडबा उठी। वह दिल्ली, जिसके सिंहासन के सामने सिर न झुकाने की शर्त के कारण मेवाड़ के सिसोदिया 1400 वर्ष तक रक्त तथा जौहर से अपनी कुर्बानियां देते रहे, वही दिल्ली और उसका सिंहासन आज उनके सामने तश्तरी में सत्ता लिए हाजिर था। यह थी चितौड़ और बप्पा रावल के मेवाड़ के प्रतिशोध की अंतिम विजय और उसी दिन से उदयपुर के महाराजा भूपाल सिंह नए राजस्थान के जिसमें सम्मिलित होने के लिए जयपुर, बीकानेर और जैसलमेर रियासतें भी सैद्धांतिक रूप से सहमत हो चुकी थी, महाराजा प्रमुख कहलाए और हैदराबार के निजाम राजप्रमुख।

जिन लोगों को राजपुताने के इतिहास का तनिक भी ज्ञान है, उन्हें मेवाड़ और जयपुर के राजघरानों की लम्बे समय से चली आ रही कटुता का अवश्य भान होगा। ऐसी स्थिति में करीब दो दर्जन रियासतों की सीमा समाप्त कर नए बनने वाले राजस्थान की राजधानी जयपुर को बनाने के लिए मेवाड़ को सहमत करना टेढ़ी खीर थी, पर यह सरदार पटेल ही थे जिनकी निश्छल देशभक्ति पूर्ण अभिव्यंजना पर मुग्ध हो भूपाल सिंह ने सहज ही जयपुर को नए राजस्थान की राजधानी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इससे पूर्व डूंगरपूर व बांसवाड़ा नरेश जब जैसलमेर, जोधपुर और बीकानेर नरेशों की अपनी–अपनी रियासतों को स्वतंत्रत राज्य बनाए रखने की लालसा या पाकिस्तान के साथ विलय की अफवाहों से प्रभावित हो मेवाड़ के महाराणा से परामर्श हेतु पहुंचे तभी उन्होंने स्पष्ट कह दिया था – 'उनके लिए तो इस संबंध में निर्णय का अधिकार और अवसर ही कहां है ? यह निर्णय अति पहले ही उनके पूर्वज समरभूमि में अपनों तरुण और ऊष्म रक्त से अंकित कर गए हैं। इससे थोड़ा भी विचलित होना उनके लिए संभव नहीं है। महाराणा के कहने का अभिप्राय यह था कि 'बप्पा रावल का वंशधर तो कभी भी और किसी भी काल में पाकिस्तान के साथ नहीं जा सकता।' महाराणा के इस उत्तर से डूंगरपुर व बांसवाड़ा नरेश सकपका गए। उनके पास कहने के लिए बचा ही क्या था।

अपने समय के जाने–माने साहित्यकार और पत्रकार विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी' ने उदयपुर के प्रख्यात साहित्यकार जनार्दनराय नागर से प्रश्न किया था कि महाराणा भूपाल सिंह का दुर्लभ गुण क्या है तो उनका उत्तर था '–निःस्वार्थ प्रजा–हित चिंतन।' और अपने इसी परम्परागत गुण के कारण स्वदेश हित में मेवाड़ के अभिमान के प्रतीक उदयपुर को नए राजस्थान की एकता के मंदिर में समर्पित कर दिया।

– सुरेन्द्र कुमार जोशी

सेवानिवृत्त आर.ई.एस., गंगानगर

सुन्दर कविता

1. जीवन में कुछ करना है, तो मन को मारे मत बैठो।
आगे–आगे बढ़ना है, तो हिम्मत हारे मत बैठो।
चलने वाला मंजिल पाता, बैठा पीछे रहता है।
ठहरा पानी सड़ने लगता, बहता निर्मल होता है।
पाँव मिले चलने की खातिर, पाँव पसारे मत बैठो।
आगे–आगे बढ़ना है, तो हिम्मत हारे मत बैठो।

2. तेज दौड़ने वाला खरा, दो पल चलकर हार गया।
धीरे–धीरे चलकर कछुआ, देखो बाजी मार गया।
चलो कदम से कदम मिलाकर, दूर किनारे मत बैठो।
आगे–आगे बढ़ना है, तो हिम्मत हारे मत बैठो।

3. धरती चलती तारे चलते, चाँद रात भर चलता है।
किरणों का उपहार बांटने, सूरज रोज निकलता है।
हवा चले तो महक बिखरे, तुम भी प्यारे मत बैठो।
आगे–आगे बढ़ना है, तो हिम्मत हारे मत बैठो।
जीवन में कुछ करना है, तो मन को हारे मत बैठो।
आगे–आगे बढ़ना है, तो हिम्मत हारे मत बैठो।

संकलनकर्ता
डॉ.आर.पी.विज
प्रशासक, सप्तऋषि आश्रम, हरिद्वार

सनातन धर्म एवं धर्मनिरपेक्षता

15 अगस्त 1947 को विभाजित शेष भारत ने अपनी नूतन शासन व्यवस्था के संचालन के लिये जिन मुख्य सिद्धान्तों का वरण किया, उनमें धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इसे अपने संविधान के मुखपृष्ठ पर बाद में 1975 में प्रकाशित किया गया तथापि इस पर प्रारम्भ से क्रियान्वयन का इतिहास हमारे समक्ष है। इस आयातित सिद्धान्त से भारत के अपने शाश्वत सनातन मूल्यों का दिनोंदिन ह्रास हुआ है, जो कि भारत की वैभवशाली सांस्कृतिक परम्परा में एक अवरोधक बना हुआ है। ऐसे समय में सनातन धर्म की महती भूमिका हो सकती है। अपनी एक स्वतन्त्र व प्रामाणिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि के माध्यम से राष्ट्र के नवनिर्माण का जो संकल्प लिया है, निश्चित रूप से यह स्तुत्य है।

"धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। यत् स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः।" इस वचन के अनुसार धर्म वह तत्त्व है जो जगत् को धारण करता है। जिसके सेवन और पालन से अर्थात् धारण से प्राणी उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

धर्म की इस परिभाषा के अनुसार–जो कुछ है वह धर्म ही है, धर्म से बाहर कुछ भी नहीं है। ऐसा होने पर भी जिससे जीवन और जगत् की स्थिति में गतिरोध उत्पन्न हो, वह अधर्म है और जिससे जीवन और जगत् की स्थिति सम्भव और सुचारु हो, वह धर्म है। अभिप्राय यह है कि जीवन और जगत् को असंतुलित करने वाला तत्त्व अधर्म है तथा जीवन और जगत् को संतुलित करने वाला तत्त्व धर्म है।

गीतोक्त दैवीसम्पत् के अनुसार धर्म के द्वारा जीवन और जगत् की स्थिति व्यवस्थित, संतुलित और नियमित रहती है, अतः अभय, अन्तःकरण की संशुद्धि और ज्ञानयोगव्यवस्थिति आदि का नाम धर्म है। इसके विपरीत आसुरी सम्पत् के द्वारा जीवन और जगत् की स्थिति अव्यवस्थित व असंतुलित हो जाती है। अतः दम्भ, दर्प, अभिमान आदि का नाम अधर्म है। सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत रहना दैवीसम्पत्सम्पन्नों का स्वभाव है –

"लभतो ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।" (गीता 5–25)

इसके विपरीत सम्पूर्ण प्राणियों के हित पर कुठाराघात करना आसुरी सम्पत्सम्पन्नों का स्वभाव है।

धर्म के अनेक लक्षण व व्याख्यायें अनेकों ऋषि–महर्षि व विद्वानों ने की हैं तथा वे सभी एक दूसरे की पूरक हैं, विरोधी नहीं। इसीलिये कहा गया है कि इस सतत् परिवर्तनशील संसार में प्राणियों की आयु, प्राण, धन इत्यादि जो कुछ भी है, सभी कुछ विद्युत के समान चंचल है, प्रतिपल नष्ट होने वाला है। इस चराचर जगत् में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो नित्य ध्रुव रहने वाला हो और नष्ट न हो। शाश्वत तथा सदा स्थिर रहने वाला यदि कोई है तो वह है केवल कालजयी धर्म। इसीलिये बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि वह एकनिष्ठ मन से अमृतस्वरूपी धर्म का ही सदा सेवन करे, आचरण करे।

मनुस्मृति के अनुसार धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के ये दस तत्त्व या मूल्य सभी के लिये उन्नतिकारक हैं, शान्तिस्थापना में सहायक हैं, अभ्युदय एवम् निःश्रयेस के हेतु हैं। अतः इनका पालन करना धर्म है।

अमरकोष के अनुसार धर्म का अर्थ–पुण्य, यम, नीति (न्याय), स्वभाव, आचार एवम् यज्ञ होता है। यम का अर्थ इन्द्रियसंयम तथा मृत्युपति धर्मराज भी है। ये मृत्युपति यम वस्तुतः संयम की प्रतिमूर्ति हैं। ये निरपेक्षतापूर्वक पुण्यात्म एवम् पापियों के लिये दण्ड धारण करते हैं, अतः यम हैं। इसी प्रकार दमनार्थक सत्य, क्षमा, सरलता, अहिंसा, कोमलता, प्रीति, माधुर्य आदि भेद से यम भी दस प्रकार के कहे गये हैं।

स्वाभाविक विशेषता भी धर्म है – जैसे सूर्य का तेज। वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप अपने–अपने कर्तव्यों का अनुपालन विशेष धर्म है।

यही धर्म जो अनादिकाल से मानवजाति के कल्याणार्थ तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त लिये "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेद्" के संदेश के द्वारा युगयुगीन श्रुतियों–स्मृतियों में संकलित हुआ ऋषियों–महर्षियों द्वारा व्याख्यायित व आचरित होता हुआ जाति, सम्प्रदाय, मजहब–पन्थ, रीलीजन आदि की सीमाओं से परे अपनी सनातनता को स्वयंसिद्ध प्रमाणित करते हुए सनातन धर्म के नाम से पुकारा जाता है।

सनातन धर्म मानवता का धर्म है। यह किसी विशेष मतवाद, उपासना पद्धति अथवा आचार–निष्ठा का नाम नहीं है, प्रत्युत जगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर द्वारा लोकयात्रा को सुगम बनाने के लिये बनाया गया अनादिकाल से अनन्तकाल तक प्रवर्तमान रहने वाला वह विधि–विधान है जो सभी देशों, कालों एवम् सभी सभ्य समाजों में सुखी और समृद्ध जीवन के लिये आवश्यक है। जब हम सनातन धर्म के सार्वभौम होने की बात करते हैं, तब हमारी दृष्टि में निर्विशेष साधारण धर्म होता है, जिसका सम्यक् स्वरूप धर्मशास्त्रकारों ने रागद्वेष विनिर्मुक्त पारदृश्य मनीषियों ने बहुधा समझा और समझाया है क्योंकि धर्म की गति बहुत ही सूक्ष्म और गहन है और इसे एक निश्चित परिभाषा में बांधना कठिन है। इसलिये आद्यःव्यवस्थापक भगवान् मनु ने धर्म के जो दश लक्षण व्यवहृत किये, वे सभी अपने स्वरूप में सम्प्रदाय–उपासना–पद्धति निरपेक्ष हैं। ये ऐसे जीवन मूल्य हैं जो देवी सम्पदा के रूप में कल्याणकारी दिव्य गुणों के रूप में सभी के लिये अनुकरणीय है। इन जीवन मूल्यों की प्रशंसा करते हुए हमारे मनीषियों ने – "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" अर्थात् धर्म सम्पूर्ण चराचर जगत् का आधार है, तथा "विश्व धर्मे प्रतिष्ठितम्" अर्थात् यह विश्व धर्म पर ही टिका है, ऐसा कहा। इसलिये महामति वेदव्यास जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि "न धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः" क्योंकि "धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः" अर्थात् जीवन की रक्षा के लिये भी धर्म का त्याग न करे, क्योंकि धर्म की हत्या से जीव की हत्या होती है तथा धर्म की रक्षा से ही उसकी रक्षा होती है।

यही सनातन धर्म है, यही हिन्दु धर्म है क्योंकि इस परम्परा का जन्म आर्यावर्त–जम्बूद्वीप – भरतखण्ड–भारतवर्ष–हिन्दुस्थान में हुआ तथा यहां के मूल निवासी इस परम्परा के सतत् पालक व साधक हैं और परम्परा से यहां के निवासियों के धर्मानुरागी व श्रेष्ठ होने के कारण पहले आर्य कहा गया फिर सिन्धु–सप्तसिन्धु–हप्तहिन्दु आदि शब्दों के विकास के कारण कालान्तर में यहां के निवासियों की पहचान हिन्दु के रूप में विकसित हुई, इसलिये यहां के निवासियों के द्वारा ही धर्मधारा के प्रवाहण से इसे ही हिन्दु धर्म भी कहा जा सकता है। वस्तुतः धर्म–सनातन धर्म–हिन्दू धर्म में कोई मौलिक भेद नहीं है। अंग्रेजों ने भी हिन्दु की भाँति यहाँ की पहचान सिन्धु नदी से करते हुए सिन्धु को **Indus River** कहने के कारण हिन्दुस्थान को **India** तथा यहां के निवासियों को **Indians** कहा है।

अतः परम्परा व प्रकृति प्रदत्त भारतीय मनीषा के लोकाचरण को धर्म–सनातन धर्म तथा हिन्दु धर्म के रूप में विद्वज्जनों द्वारा स्वीकार किया गया है।

आर्यों के पश्चिम एशिया से आये आक्रामकों के रूप में **'Aryans'** कहना विदेशी विधर्मियों का भारतीय समाज को तोड़ने का जो षड्यन्त्र था, वह धूल–धूसरित हो चुका है। अतः आर्य इस भारतभूमि के मूल निवासी हैं, इस तथ्य में अब कोई सन्देह नहीं है। एतदर्थ आर्य व हिन्दु में कोई भेद नहीं है। हिन्दु शब्द को अरबी–फारसी शब्दकोष में खोजने व उस प्रकार से व्याख्या करने से विनाशकारी विवेकशून्य उत्पन्न होगा। हिन्दु शब्द की अति सटीक व्याख्या स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने दी है –

"आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।।"

अर्थात् सिन्धु नदी से सागर पर्यन्त जो भारतभूमि है, इस पर रहने वाले वे सभी जो इसे अपनी मातृभूमि, पितृभूमि व पुण्यभूमि मानते हैं–वे सभी हिन्दु हैं। हिन्दु शब्द को अरबी–फारसी साहित्य में खोजना व उनके द्वारा वर्णित कुटिलतापूर्ण हिन्दु की परिभाषा के बारे में विचार करना अपनी विद्वत्ता का भौंडा प्रदर्शन मात्र है। परम्परा प्राप्त अपने शब्दों के विश्लेषण हेतु जब

भी हम पारकीय भाषा–शब्दावली का सहारा लेते हैं हमारे समक्ष भ्रान्तियुक्त परिदृश्य ही परिलक्षित होगा, जो कि हमारी समझ से विकृति उत्पन्न करेगा।

वस्तुतः लगभग एक सहस्र वर्ष की पराधीनता ने भारतीयों के मस्तिष्क में ऐसा विषवेध किया है कि भारतीय अब केवल उन्हीं की तरह सोचने में गर्व का अनुभव करते हैं तथा वे विदेशियों द्वारा हमारे शब्दों की व्याख्या का श्रद्धा पूर्वक अनुसरण कर ही स्वयं को कृतकृत्य मानते है। यही कारण है कि हम धर्म शब्द को रीलीजन मान, स्वयं को सेक्यूलर स्थापित करने के लोभ में हो जाते हैं–धर्मनिरपेक्ष। यहीं से हमारा नैतिक पतन प्रारंभ हो जाता है।

थॉमस जैफरसन एज प्रेजिडेंट ऑफ यूनाईटिड स्टेटस ने 1802 में सर्वप्रथम यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसका मुख्य उद्देश्य चर्च को स्टेट (शासन व्यवस्था) से विलग करना था। बाद में डेनबरी बेपनीस्टस ने यूनाईटिड स्टेटस कॉन्स्टिटयूशन की फसट एमेंडमेंटस के रूप में इसे प्रस्तुत किया। बहुत वर्षों बाद 1876 में अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस सिद्धान्त की पुष्टि के पश्चात् इसे वहां लागू किया गया तथा उसका अनुकरण करते हुए विश्व के अनेक ईसाई राज्यों ने इसे सिद्धान्त रूप में लागू किया। स्वाधीनता उपरान्त के भारतीय शासकों पर पश्चिम के गहरे प्रभाव के कारण दुर्भाग्य से भारत को एक राष्ट्र से यूनियन ऑफ स्टेटस बना कर यहां भी सेक्यूलरिज्म की नकल के रूप में धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त लागू कर, इस सनातन–पुरातन राष्ट्र व इसकी आत्मा–धर्म को गहन कूप में डाल दिया।

भारत एक धर्मपरायण राष्ट्र रहा है, धर्म भारत की आत्मा है। भारत को धर्म से विलग करने से भारत की स्थिति आत्माविहीन शरीर सदृश होगी। किन्तु दुर्भाग्य से भारत के मतिभ्रमित शासकों ने भारत को सेक्यूलर षड्यंत्र के बहाने विनाश के मार्ग पर धकेल दिया है। धर्मविमुख समाज कभी एक श्रेष्ठ समाज के रूप में विकसित नहीं हो सकता।

भारत के सेक्यूलर राजनेताओं के कुविचारित दृष्टिकोण का ही परिणाम है कि देश का विभाजन इस्लाम के नाम पर हुआ। विभाजन के साथ ही सनातन धर्म अथवा आर्य समाज द्वारा संचालित समस्त प्रकल्पों का पाकिस्तान बने भारत के उस भूभाग में या तो अंत हो गया अथवा पलायन, किन्तु शेष बचे भारत को सेक्यूलर इंडिया बना, यहां दिया गया इस्लाम संस्थाओं को सहयोग एवम् संरक्षण। पाकिस्तान ही नहीं अपितु अपने भाग के कश्मीर में भी सनातन धर्म का शनैः शनैः लोप हो गया है। हिन्दी–संस्कृत का पाकिस्तान में ही नहीं, भारत के कश्मीर में कोई नामलेवा नहीं है और शेष भारत में भी हिन्दी के नाम पर बची है अंग्रेजी शब्दावली द्वारा विकृत हिंगलिश अथवा अरबी–फारसी शब्दावली युक्त हिन्दुस्तानी। हिन्दी–संस्कृत की हत्या का यह दुर्नियोजित षड्यंत्र सतत जारी है और जारी है भारत से धर्म–सनातन धर्म–हिन्दु धर्म की हत्या का मार्मिक आंदोलन।

सनातन धर्म के मूल स्रोतों पर चहुँ ओर से आक्रमण हो रहा है, हमारी आस्था के प्रतीकों का बलात्कार हो रहा है, सेक्यूलर के नाम पर भाषा–संस्कृति की निर्बाध उपेक्षा हो रही है, किन्तु लगता है जैसे सनातन धर्म के ध्वजवाहक सनातन धर्म सभा आदि चिरनिद्रा में लीन है। सनातन धर्म की अपनी शिक्षण संस्थायें हिन्दी भाषा विद्यालयों के स्थान पर 'पब्लिक स्कूलज' बनाने की होड़ में लगी हैं। सनातन धर्म की अपनी शिक्षण संस्थाओं में धर्मशिक्षा के स्थान पर पश्चिमी संस्कृति के संस्कारों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है व बालकों को धर्मविमुख करने में ये संस्थाएं सहायता ही कर रही हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता के पश्चात् सनातन धर्म के नाम से चलने वाले भारतीय संगठन भी सनातन धर्म–हिन्दु धर्म को अक्षुण्ण बनाए रखने में असफल रहे हैं, यह अत्यधिक दुर्भाग्य की बात है। धर्म को स्थापित रख पाने से ही भारत बचेगा। धर्म की स्थापना के लिये द्वापर युग के किसी कृष्ण की प्रतीक्षा करना मूर्खता होगी। यह कार्य हमें ही करना है।

– डॉ. जय प्रकाश गुप्त
अमृतकलश चिकित्सालय,
अम्बाला छावनी

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में धार्मिक प्रदूषण और उसका परिष्कार

सनातन धर्म के पास ज्ञान की अक्षय निधि है। सनातन धर्म सदैव ही मानव कल्याण व परिष्करण का परिचायक रहा है। आरम्भ से लेकर आधुनिक काल तक सनातन धर्म से सम्बन्धित महापुरुषों ने समाज को एक नई दिशा दी है। सनातन धर्म का जीवन दर्शन विश्व के सभी दर्शनों में सर्वोपरि है। हमारी धर्म साधना महान है। हमारे शास्त्रों, वेदों, पुराणों व अन्य धार्मिक व आध्यात्मिक ग्रन्थों में ज्ञान का अथाह सागर भरा पड़ा है। इस ज्ञान सागर ने अनेक ज्ञान सरिताओं को आत्मसात् किया है और प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी इस अमूल्य धरोहर पर गर्व कर सकता है।

इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं कि पूर्व में सनातन धर्म ने समाज के संरक्षण व संवर्धन में अमूल्य योगदान किया है और यह योगदान वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आज जब कि हर तरफ पाखण्ड व प्रपंच का बोलबाला है, ऐसी स्थिति में सनातन धर्म की मान्यताएँ और शिक्षाएँ पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गई हैं। आज जब कि समाज अनेक समस्याओं तथा चुनौतियों से जूझ रहा है ऐसे में सनातन धर्म का मार्ग–दर्शन समाज को पथ भ्रष्ट होने से बचा सकता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। ये परिवर्तन सकारात्मक भी हो सकते हैं और नकारात्मक भी। अन्तर मात्र इतना है कि नकारात्मक परिवर्तन अपेक्षाकृत शीघ्र हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि हमारी मान्यताओं में भी परिवर्तन आ रहा है। हम अतीत की परम्परा व अक्षय ज्ञान–निधि पर गर्व तो करते हैं परन्तु प्रश्न यह है कि उस उज्ज्वल परम्परा व ज्ञान–निधि के संवर्धन में हमारा योगदान क्या है ? क्या जिन सिद्धांतों पर हम गर्व करते हैं वे सिद्धांत हमारे आचरण में भी झलकते हैं अथवा नहीं ? सम्भवतः इस प्रश्न का उत्तर उत्साहजनक नहीं होगा। हम या तो आचरणविहीन हो गए हैं या हमारा आचरण उपयोगितावादी हो गया है। जो मान्यताएं व सिद्धान्त हमें अपने उपयोगी व अनुकूल लगते हैं हम उनका अनुसरण करते हैं व अन्य का त्याग कर देते हैं भले ही पूर्व में उन सिद्धांतों व मान्यताओं पर हम गर्व करते रहे हों।

आज समाज में स्वार्थपरायणता इस सीमा तक बढ़ गई है कि हमें अपने अतिरिक्त और कुछ नज़र ही नहीं आता। हम अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी सीमा तक नीचे गिरने के लिए तैयार रहते हैं। इसी स्वार्थपरायणता के कारण हमारे भीतर उन मानवीय मूल्यों का क्षरण हो रहा है जो मानवीय मूल्य हमें सनातन धर्म से धरोहर स्वरूप मिले हैं। दया, प्रेम, सद्भावना जैसे मूल्यों का मूल नाश होता हुआ नजर आ रहा है।

एक और समस्या जो दिन–प्रतिदिन गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। वह है सनातन धर्म की आड़ में नए नए पंथों का उदय तथा विकास। ये नवोदित तथाकथित पंथ सनातन धर्म की आड़ में धार्मिक प्रदूषण फैला रहे हैं। इन्होंने धर्म का व्यापारीकरण कर दिया है। बड़ी–बड़ी दुकानें लगा कर, सजा कर धर्म का व्यापार किया जाता है। जिस दुकान की सजावट अधिक अच्छी व भव्य होती है उसके ग्राहक भी अधिक होते हैं। विशेष तौर पर इन पंथों के समागमों को अधिक से अधिक भव्य व विशाल बनाने का प्रयत्न किया जाता है और यही भव्यता और विशालता मानव की सहज बुद्धि को आकर्षित करती है और मानव इसी आकर्षण को श्रद्धा मान कर इन पंथों की ओर झुक रहे हैं। कदाचित् यह अच्छा न लगे परन्तु यह सच है कि इन पंथों के अनुयाइयों में सनातन धर्मियों की संख्या भी कम नहीं है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि पंथों अथवा कुपंथों से सनातन धर्म और समाज की अस्मिता की रक्षा की जाए।

भले ही हम अपने आप के बहुत शिक्षित होने का दावा करें परन्तु तथ्य यह है कि हम दिन–प्रतिदिन धार्मिक रूप से अनपढ़ बनते जा रहे हैं। हमारी धार्मिक मान्यताएं भ्रष्ट होती जा रही हैं और इस बात में किंचित् भी संदेह नहीं है कि इस स्थिति के लिए हमारे प्रचार–साधन भी कहीं न कहीं तक उत्तरदायी हैं। यहां तक कि हमारे देवी–देवताओं का वह स्वरूप हमारे मानस पर छपता जा रहा है जो हम टी.वी. पर देखते हैं। उनका शास्त्रीय स्वरूप हमारे मानस पटल से मिटा जा रहा है। हमारी पूजा–पद्धति तक शास्त्रीय नहीं रही। हमने अपनी सहूलियत के अनुसार इसमें भी परिवर्तन कर लिए हैं। हमारे भीतर से विचारात्मकता लगभग समाप्त हो गई है या हम सब कुछ बिना विचार किए स्वीकार कर लेते हैं। सनातन धर्म की अधिकांश मान्यताएं व सिद्धांत शास्त्रों पर आधारित हैं परन्तु हम अपने स्वार्थवश शास्त्रों के औचित्य पर ही प्रश्न उठाते हैं।

हम बात करते हैं कि आधुनिक पीढ़ी अपनी परम्परा से टूट रही है। वह अतीत की मान्यताओं को अपनाने के लिए

तैयार नहीं है क्योंकि वह उसे पुरानी मानती हैं। परन्तु इस स्थिति के लिए हम भी कहीं न कहीं उत्तरदायी हैं। हम में से कितने हैं जिन्होंने अपनी सन्तान को अपनी पुरातन परम्पराओं से जुड़ने के लिए प्रेरित किया है। मात्र स्थिति पर अफसोस प्रकट करके हम अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। क्यों नहीं हम प्रयत्न करते कि हमारी सन्तान हमारी परम्पराओं को अपनाए। क्योंकि सच तो यह है कि खुद हम भी उन परम्पराओं, शिक्षाओं और मान्यताओं को पुरानी और घिसी पिटी मान चुके हैं।

इस प्रकार ऐसी अनेक समस्याएं हैं जो आज समाज के सामने चुनौती के रूप में खड़ी हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि सनातन धर्म की शिक्षाओं का प्रचार व प्रसार कर के इन समस्याओं को हल किया जा सकता है। सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा द्वारा किए जाने वाले धार्मिक व शैक्षिक महासम्मेलन इस दिशा में किए जाने वाले सराहनीय कार्य हैं। ऐसे सम्मेलन निश्चित ही सनातन धर्म के सिद्धांतों को पुनः स्थापित करने में अमूल्य योगदान देंगे।

– कुलदीप सिंह
– अनिल हांडा
एल.एस.डी. सीनियर सैकेण्डरी स्कूल,
बस्सी दौलतखां, होशियारपुर (पंजाब)

अभिनन्दन पत्र

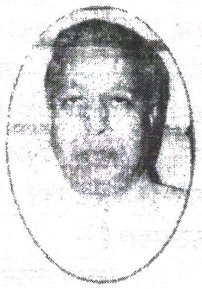

संस्कृत भाषा के कठोर साधक, कुशल वक्ता, सर्वधर्मसमभाव समन्वित, भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर, अनेक उपाधियों से विभूषित, विविध संस्थानों द्वारा प्रदत्त अलंकरणों से सुशोभित, जन मन रंजन, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. डॉ. महावीर प्रसाद अग्रवाल को भारत के राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किये जाने के उपलक्ष्य में समर्पित –

भाव कुसुमाञ्जलि

सम्मानं सत्कार्यमेव कथितं, राष्ट्रस्यकार्येशुभम्, सम्मानेन नटन्ति नैव सुधयः सम्मान शान्तिप्रदम्।
प्रायः सत्पुरुषाः भवन्ति सफलाः प्राप्येव उन्नतपदम्, सम्मानं न हि दानमानसहितं विद्वत्कुले भूषणम्।।

आज मिला सम्मान आपको, राष्ट्रपति का ऐसा, विद्वज्जन गौरवान्दित होता मुखविकसित भी होता।।
क्यों न करे सम्मान आपका ज्ञानामृत से सींचा विश्वक्षितिज पर भी संस्कृत का मानचित्र है खींचा।।

कुलपति पद को भूषित कर फिर, सबका मान बढ़ाया।
सेवा भाव कभी न छोड़ा, सबको ह्रदय लगाया।।

संस्कृत भाषा के पोषक ये, पालक छात्र जनों के, कभी न ठुकराया हम सबको जन मानस प्रिय जन हैं ये
सम्मान उसी को मिलता जग में, कृति उत्तम जिसकी होती, महावीर अग्रवाल सुधी को जनता नतमस्तक होती।

– शिक्षक वृन्द
श्री जगदद्देव सिंह संस्कृत महाविद्यालय
सप्तऋषि आश्रम, हरिद्वार

भारतरत्न महामना मदनमोहन मालवीय जयन्ती समारोह की रिपोर्ट

सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्त्वावधान में भारतरत्न महामना मदनमोहन मालवीय जी की जयन्ती के उपलक्ष्य में श्री सनातन धर्म शिक्षा समिति के सौजन्य से दिनांक 24 व 25 दिसम्बर को सप्त ऋषि आश्रम हरिद्वार में अनेक धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिसमें पंजाब, हरियाणा, हिमाचल, उत्तराखण्ड, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान की सैंकड़ों सनातन धर्म सभाओं व सनातन धर्म शिक्षण संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने सक्रिय भाग लिया। इस अवसर पर 24 दिसम्बर की संध्या को विद्यालयीय स्तर पर सामूहिक भजन गायन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें उक्त प्रदेशों के सनातन धर्मी स्कूलों ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। इसके साथ ही मालवीय जी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान विषय पर निबन्ध लेखन प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया।

25 दिसम्बर को प्रतिनिधि सभा के कार्यकारी अध्यक्ष श्री इन्द्रमोहन गोस्वामी जी के नेतृत्व में सनातन परिवार के सदस्यों ने प्रातः सर्वदेव पूजन एवं यज्ञ अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् प्रतिनिधि सभा पंजाब के संस्थापक भारत रत्न महामना मालवीय जी की पुरुष परिमाण प्रतिमा पर माल्य अर्पण कर उन्हें भाव भीनी श्रद्धांजलि दी गई। सप्तऋषि आश्रम में स्थित श्री जगद्देव सिंह संस्कृत महाविद्यालय के छात्रों ने शंख–ध्वनि के साथ वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्वस्तिवाचन किया। स्वामी रामतीर्थ सभागार में सामूहिक भजन गायन प्रतियोगिता में विजेता टीमों ने अपने भजनों की पुनः प्रस्तुति दी। भजन गायक श्री सुशील कुमार शर्मा व श्रीमती सुनीता जी ने मनमोहक भजनों की प्रस्तुति की। श्री इन्द्र मोहन गोस्वामी एवं श्री उपेंद्र शर्मा जी ने अपने कर कमलों से श्री जगद्देव सिंह संस्कृत महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका–सप्त ऋषि के प्रथम पुष्प का विमोचन किया। डॉ. देशबंधु एवं डा. नन्द किशोर शर्मा ने सनातन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के साथ साथ स्वतंत्रता संग्राम व समाज कल्याण में मालवीय जी के महत्त्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डाला। श्रद्धांजलि समारोह में हरिद्वार के जाने माने समाज सेवी एवं सनातन धर्मी ब्रह्मचारी सतपाल जी महाराज तथा गंगा सभा हरिद्वार के प्रधान श्री पुरुषोत्तम दास गाँधी वादी जी की गरिमामयी उपस्थिति रही। समारोह के अन्त में विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किए गए। प्रतियोगिताओं के परिणाम इस प्रकार हैं –

निबन्ध लेखन कनिष्ठ वर्ग में एस.डी.सी.सै.स्कूल अम्बाला छावनी के छात्र प्रियांशु ने प्रथम, एच.एस.डी.सी.सै. स्कूल गुरदासपुर के वसु शर्मा ने दूसरा, पं. अमरनाथ एस.डी.पब्लिक स्कूल नागरी हिमाचल प्रदेश ने तीसरा स्थान व एस.डी.विद्या स्कूल अम्बाला छावनी ने सांत्वना पुरस्कार प्राप्त किया।

वरिष्ठ वर्ग में जी.आर.एस.डी.सी.सै.स्कूल अम्बाला शहर की सुश्री प्रेरणा शर्मा ने प्रथम, एस.डी.फुल्लर्वान गर्ल्ज सी.सै.स्कूल जालन्धर की कु. गीतिका ने द्वितीय, आसाराम सी.सै. पब्लिक स्कूल अम्बाला छावनी की कु. किरण ने तृतीय तथा पं. अमरनाथ एस.डी.पब्लिक स्कूल नागरी की छात्रा कु. मंजिल ने सांत्वना पुरस्कार प्राप्त किया।

सामूहिक भजन गायन प्रतियोगिता में एस.डी. फुल्लर्वान गर्ल्स सी.सै. स्कूल जालन्धर की टीम ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। एस.डी.विद्या अम्बाला छावनी व श्री जगद्देव सिंह संस्कृत महाविद्यालय सप्त ऋषि आश्रम हरिद्वार द्वितीय स्थान पर रहे। एच.एस.डी.गर्ल्स सी.सै. स्कूल गुरदासपुर तथा एस.एस.एस.डी.इंटर कालेज हरिद्वार ने तृतीय पुरस्कार प्राप्त किया। एस.डी.सी.सै.स्कूल अम्बाला छावनी, जी.आर.एस.डी.सी.सै. स्कूल अम्बाला शहर तथा एस.डी.गर्ल्स स्कूल खड़खड़ी हरिद्वार को सांत्वना पुरस्कार प्रदान किया गया।

– **डॉ. देशबन्धु**
महामन्त्री
सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा

श्री सनातन धर्म महावीर दल पंजाब (रजि०)

अर्द्ध कुम्भ मेला प्रयागराज रिपोर्ट

श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब, नई दिल्ली तथा श्री सनातन धर्म महावीर दल हैड ऑफिस का संयुक्त सेवा शिविर 21 जनवरी 2019 से 8 फरवरी 2019 तक अर्द्धकुम्भ मेला प्रयागराज में लगाया गया। इस कैम्प में 1.2.2019 से लेकर 4.2.2019 तक हवन यज्ञ तथा श्री रामकथा का आयोजन किया गया। जिसमें हरिद्वार से आए ब्राह्मणों द्वारा हवन यज्ञ किया गया तथा श्री दीनदयाल जी द्वारा श्री रामकथा का आयोजन किया गया। उस शिविर में श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री उपेन्द्र शर्मा, हैड ऑफिस भूपेन्द्रा भवन के मैनेजर श्री अरूण शर्मा तथा जालन्धर से डॉ. आर.पी. भारद्वाज विशेष तौर पर पधारे। श्री सनातन धर्म महावीर दल द्वारा श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के सहयोग से 21 जनवरी से लेकर 8 फरवरी तक कुम्भ मेले में पधारे यात्रियों के लिए प्रातः चाय, दुपहर और रात्रि के भोजन के लिए अन्न क्षेत्र का प्रबन्ध किया गया जिसमें लगभग 1500 यात्री प्रतिदिन प्रसाद ग्रहण करते थे।

सेवा शिविर के लिए मेला प्रशासन द्वारा 90,000 वर्ग गज़ जगह अलाट की गई। इसके साथ ही छः शौचालय और तीन पानी के नल, 9 बिजली के बल्ब, एक E.P. टैंट, एक छोलदारी, एक 8×8 का टीन शैड दिया गया। शेष सारा प्रबन्ध सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा और महावीर दल ने मिलकर किया। आए हुए स्वयं सेवकों के लिए 15 शौचालय, 10 पानी के नल, दो बाथरूम तथा नहाने के लिए गर्म पानी का इन्तज़ाम किया गया। स्वयं सेवकों के लिए 5 E.P. टैंट, 25 छोलदारी, राशन के लिए 10×12 का कमरा बनवाया गया। श्री रामकथा के लिए 30×50 का पंडाल बनवाया गया। सभा और महावीर दल का कैम्प एक ही जगह पर लगाया गया। प्रचार कैम्प के लिए अलग गेट और सेवा शिविर के लिए अलग गेट बनाए गए और कैम्प की बाऊंडरी वाल करवाई गई।

इस बार कैम्प में 127 स्वयं सेवक पहुँचे। जिन्होंने लंगर बांटने और मेला प्रशासन द्वारा दी गई ड्यूटी दी। मेला प्रशासन द्वारा महावीर दलों में से केवल सनातन धर्म महावीर दल हैड आफिस चण्डीगढ़ को ही ड्यूटी प्रदान की गई। महावीर दल के स्वयं सेवकों की ड्यूटी संगम, अखाड़ा मार्ग तथा यात्रियों को डूबने से बचाने के लिए बोट पर लगाई गई। मुख्य शाही स्नान के दिन हमारे स्वयं सेवकों की ड्यूटी प्रातः 4 बजे से लेकर सायं 5 बजे तक लगाई गई और हमारे स्वयं सेवकों की प्रशंसा सैक्टर मैजिस्ट्रेट तथा थाना संगम द्वारा की गई। इस कैम्प को सफल बनाने के लिए श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा 3 लाख की सहायता दी गई। इसके अतिरिक्त भिन्न–भिन्न महावीर दलों द्वारा धनराशि दान रुप में प्राप्त हुई। लंगर को सफल बनाने हेतु श्री सनातन धर्म महावीर दल लुधियाना द्वारा, श्री सनातन धर्म महावीर दल मलेरकोटला, धूरी तथा फरीदाबाद द्वारा राशन दिया गया। जिसमें से 6 क्विंटल चावल, 80 किलो दालें, 180 किलो आटा, 20 किलो घी, नमक आदि सप्तऋषि आश्रम को दिया गया तथा 50 किलो चावल हैड आफिस में चल रहे लंगर के लिए दिए गए। इस कैम्प को सफल बनाने के लिए सनातन धर्म महावीर दल के सभी पदाधिकारियों, मैम्बरों तथा कर्मचारियों ने पूर्ण योगदान दिया। सेवा शिविर को सफल बनाने के लिए मैं इन सबके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

– महन्त सरूप बिहारी शरण

प्रधान

सनातन धर्म महावीर दल, पंजाब

डॉ. नन्द किशोर शर्मा, प्रधान संपादक
10, अशोक विहार, महेश नगर
अम्बाला छावनी – 133001
मो. 9896589890, 8708534636

डॉ. देशबन्धु,
1117, प्रभु प्रेमपुरम, जगाधरी रोड़,
अम्बाला छावनी – 133001
मो. 9812053283

सदस्यता सहयोग प्रपत्र

मैं/हमारी संस्था ....

स्थायी पता ....

....

श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब (पंजी.) द्वारा प्रकाशित की जा रही ''सनातन संवर्धिनी'' नामक अर्द्धवार्षिक पत्रिका के लिए 100/– रू. (एक सौ रुपये केवल) की सहयोग राशि प्रतिवर्ष प्रदान करने का संकल्प लेता हूँ/लेती हूँ।

मैं/हमारी संस्था यह राशि नकद/चैक/ड्राफ्ट द्वारा श्री सनातन धर्म शिक्षा समिति (पंजी.) के नाम प्रेषित कर रहा हूँ/रही है।

हस्ताक्षर ....

नाम ....

पद ....

<u>गौशाला हेतु दान संकल्प</u>

मैं ....

स्थायी पता ....

....

श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब (पंजी.) द्वारा सप्तऋषि आश्रम हरिद्वार में संचालित गौशाला के लिए रुपये .... (शब्दों में) .... की दानराशि प्रतिवर्ष देने का संकल्प लेता हूँ/लेती हूँ। मैं यह राशि सप्तऋषि आश्रम हरिद्वार के नाम नकद/चैक/ड्राफ्ट द्वारा प्रदान कर रहा हूँ/रही हूँ।

हस्ताक्षर

दिनांक 24-25 दिसम्बर 2018 को सप्तऋषि आश्रम, हरिद्वार में आयोजित
भारत रत्न महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी की जयन्ती समारोह की झलकियाँ

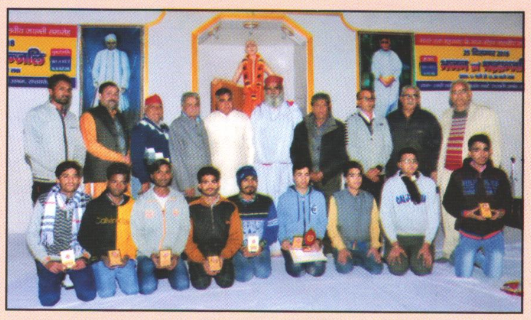

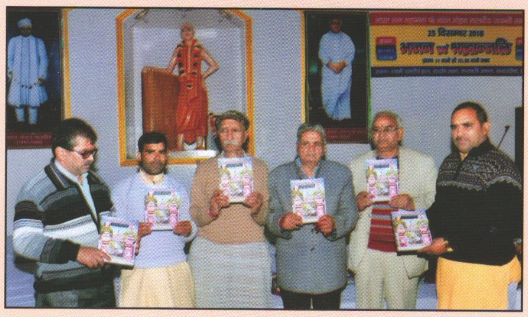

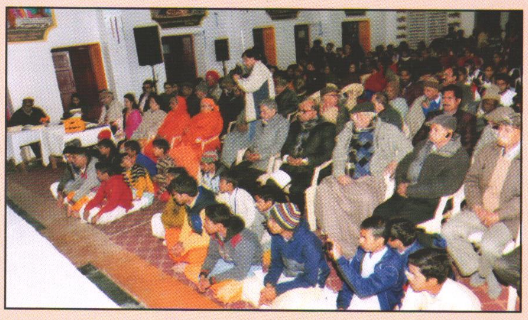

अभिनन्दन-पत्र

वैदिक सनातनधर्मसंरक्षक वक्तृकुशल मातृभूम्योपासक भारत माता मन्दिर के संस्थापक विश्व जनमानस के लोकप्रिय आध्यात्मिक गुरु धर्मप्राण ज्ञानोदधि निवृत्तशंकराचार्य पद्मविभूषण उपाधिविभूषित समन्वय कुटीर संचालक कविहृदय परमपूज्य सन्तमनीषी श्रद्धेय स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि जी महाराज के पावन चरणों में समर्पित।

।।वाक्प्रसूनोपहार।।

सत्यस्वरूप ब्रह्म का है यह
जगतमित्र है जिनका।
क्षणप्रतिक्षण आनन्द में रहते
सत्यमित्रानन्द नाम है उनका।

वास सदा कुटीर में करते
प्रभुचिन्तन में मस्त ही रहते।
यज्ञ–दान और तप साधन से
भारत माँ की सेवा करते।।

वक्तृकुशलता भी अनुपम है
सागर सदृश विशाल हृदय है।
नहीं वचन में कहीं कठोरता
मधुमय यह सारा जीवन है।।

बालवृद्ध की रक्षा करते
सदा समन्वय दृष्टि रखते।
विकसित हो भारत यह मेरा
यही निवेदन माँ से करते।

गाथा गाऊँ कैसे उनकी
शब्द नहीं ये पूरे होते।
धर्मप्राण हरिहर भूमि में
अभिनन्दन हम उनका करते।।

निवेदक -
आचार्य रामचन्द्र गोविन्द वैजापुरकर
पूर्व अध्यापक एवं समस्त अध्यापक महानुभाव
श्री जगदेव सिंह संस्कृत महाविद्यालय
सप्तऋषि आश्रम हरिद्वार (उत्तराखण्ड)